Vol. 5, Issue. 2 (July 2016) pp. 31-34 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

रवीन्द्रनाथ का पहाड़ प्रेम और संगीत

डॉ.पंकज उप्रेती
एसि0 प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष संगीत
रा0स्नातकोत्तर महाविद्यालय बेरीनाग
(पिथौरागढ़) उत्तराखण्ड
Email- editorpighaltahimalay@gmail.com
Website - www.pighaltahimalay.com

गुरुवर रवीन्द्र नाथ टैगोर जितने गहरे कलाकार थे उतने ही वैज्ञानिक सोच वाले भी, संगीत विज्ञान पर उनका ऐसा प्रभाव देखा जा सकता है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने जिस विधा को जन्म दिया उसे– 'रवीन्द्र संगीत' कहा जाता है। रवीन्द्र बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के थे और उन्होंने धर्म–कला–विज्ञान–ज्ञान की शाखाओं के मर्म को समझते हुए प्रकृति की रीति के साथ चलने का सन्देश दिया।

भारतवर्ष के उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जनपद के ग्रामसभा उमागढ़ विकासखण्ड एवं तहसील रामगढ़ के अन्तर्गत भवाली से 15 किमी दूरी पर रामगढ़, शान्त और सुन्दर प्राकृतिक स्थल है। समुद्र तल से 2100 मी. ऊँचाई पर स्थित रामगढ़ के इस अनुपम एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर यह स्थल पूर्व से ही जिज्ञासुओं, प्रकृति प्रेमियों, विद्वानों, साहित्यकारों एवं पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसी कारण भारत के राष्ट्रीय गान के रचियता तथा नोबल पुरस्कार से अलंकृत गुरुवर रवीन्द्र ने अपने विश्व प्रसिद्ध काव्य 'गीतांजलि' के लेखन के लिये रामगढ़ को चुना।[1] रवीन्द्र का पहाड़ प्रेम उन्हें रामगढ़ में रहने को विवश कर गया था और यदि वह यहाँ होते तो पहाड़ के लोकसंगीत के साथ भी प्रयोगों का एक पढ़ाव रामगढ़ हो जाता। यह वही रामगढ़ है जहाँ महादेवी वर्मा भी रही थीं।[2] 1903 में गुरुवर रामगढ़ अपनी बेटी के स्वास्थ्य लाभ के लिए स्विटजरलैंड निवासी डेनियल के अतिथि बनकर आये थे। उन्होंने 8000 फिट की ऊँचाई पर एक भवन भी बनाया, जिसमें गीतांजली लेखन का कार्य किया, परन्तु बेटी की मृत्यु के कारण वे निराश मन से बंगाल लौट गये।[3] रवीन्द्र नाथ पहाड़ में आये तो थे डेनियल के अतिथि के रूप में किन्तु उनका कलाकार मन प्रकृति में रम चुका था, उनका सपना जिस पहाड़ी को विकसित करने का था, वहीं पर उनका भवन बनवाया और परमियन काल के पूवार्द्ध में पैदा हुई चीन मूल की एवं वर्तमान में विश्व में विलुप्तप्राय पादप प्रजाति तथा एकमात्र जीवित जिवास्म 'गंगो बाईलोवा' नाम उस वृक्ष में दिखती है जो उनके आवास के ठीक पीछे आज अपनी यौवनावस्था में पहुँच गया है।[4]

प्रो. अतुल जोशी कहते हैं– ''आज सबसे पहला प्रश्न यह है कि गुरुवर टैगोर ने हजारों किलोमीटर दूर से इस पर्वतीय भूभाग को ही गीतांजलि जैसे महाकाव्य के लेखन के लिए रामगढ़ को ही क्यों चुना, जबकि स्वयं बंगाल सहित पूर्वोत्तर भारत का पर्वतीय क्षेत्र भी भौगोलिक एवं प्राकृतिक रूप

से रामगढ़ की भौगोलिक स्थिति से मिलता जुलता है।''[5] टैगोर का पहाड़ प्रेम होना स्वाभाविक है। जिस संगीत को लेकर वह शुरु होते हैं उसकी लहर यात्रा और खोज के बाद उत्पन्न होती है। इस सच्चाई को मैं तब महसूस करता हूँ जब पहाड़ की दुर्गम यात्राओं को अंजाम देता हूँ और अनजान पथों पर पग धरता हूँ। संगीत मात्र सरगम का खेल नहीं बल्कि यह एक विचार भी है। प्रकृति के बीच विचरने से दर्शन, कला की कौंध होने लगती है और एक शैली बन जाती है। टैगोर की भी अपनी शैली बनी जिसे उनके गीत, कविता, नाट्य संगीत में देखा जा सकता है। 'रवीन्द्र संगीत' के रूप में जिस विशिष्ट संगीत की धारा उन्होंने चलाई उसका अपना ही शास्त्र है।

लोक का अपना शास्त्र होता है, सो गुरुदेव के संगीत में भी लोक का प्रभाव है किन्तु मात्र बांग्ला होना ही उनकी शैली नहीं है। इस बात को वह महसूस करते थे शायद इसी लिये उन्होंने पहाड़ को चुना। वह दौर जब संसाधनों की कमी थी, कवीन्द्र रवीन्द्र ने बंगाल से यात्रा कर इसे ही क्यों चुना? एकदम निर्जन में जिस स्थान को इस कलावन्त ने चुना, जिसके खण्डहर आज भी उनकी स्मृति को ताजा किये हुए हैं। लोक संगीत ही शास्त्रीय संगीत की जननी है और लोक की मान्यता समूह में होती है। लोक हमेशा नकल की बजाय स्वाभाविकता का पालन करता है। गुरुदेव रवीन्द्र का भी यह मानना था, तभी तो उन्होंने शास्त्रीय संगीत की जड़ों को जानने के बावजूद अपनी स्वाभाविकता को नहीं छोड़ा। यह एक बड़ा सत्य है कि जो भी स्वाभाविक कलाकार–चित्रकार–लेखक–विज्ञानी–ज्ञानी होगा वह अपनी छाप अपने अंदाज में छोड़ता है। शास्त्रीय संगीत कलाकारों के तमाम उदाहरण देख लीजीये– भीमसेन जोशी, जसराज, कुमार गन्धर्व, विस्मिल्ला खान, हरिप्रसाद चौरसिया, पन्नालाल घोष इत्यादि। फिल्मी गायकों के उदाहरण भी देख लें– लता, रफी, मुकेश इत्यादि। कहने का आशय यह है कि असल कलाकार अपने आप में एक होता है और शेष उसकी नकल करने लगते हैं। संगीत में नायकी–गायकी के बारे में बताया जाता है। जब शिष्य अपने गुरु/उस्ताद से सीखता है तब वह नकल करता है अर्थात नायकी और जब वह मझ कर अपनी प्रस्तुति देता तब वह गायकी करने लगता है। सीखने के क्रम में नकल स्वाभाविक है किन्तु अपनी प्राकृतिक स्वाभाविकता को नष्ट नहीं करना चाहिये। इस बारे में गुरुदेव का मानना था कि शास्त्रीय किलिष्टता के चक्कर में संगीत रचना और उसमें निहित भाव को गम्भीर हानि पहँचती है। भाव के साथ ही संगीत खिलता है। भावपूर्ण संगीत ही कर्णप्रिय और रंजक होता है।

रवीन्द्रनाथ के संगीत में बंगाल के लोक की छाप और पहाड़ का सा दर्द है। वह कहते थे– शास्त्रीय संगीत सीखने के लिये गले के प्राकृतिक गुण–धर्म को नष्ट करना न्यायसंगत नहीं है। आवाज मिठास युक्त और भावपूर्ण होनी चाहिये। बंगाल संगीत विधा में समृद्ध रहा है, यहाँ के लोक का संगीत और शास्त्रीय संगीत का अद्भुत प्रचलन सोचने पर मजबूर करता है कि गद्य और पद्य दोनों में लयकारी है। ऐसी लयकारी जो कई सम्भावनाओं को संगीत की दृष्टि से बताता है। यहाँ राधा–कृष्ण से

सम्बन्धित गीतों को कीर्तन के नाम से जानते हैं और पदावलियों को दुहराते हुए गाते हैं। लोकधुनों की छाया भी इनमें है। बंगाल में भटियाली लोकगीत भी समृद्ध है, इसमें दीर्घ स्वरों के साथ धुन गाई जाती है। बाउल संगीत के रूप में काव्य की भावप्रधान प्रस्तुति देखने को मिलती है। चटक प्रस्तुति के लिये चटका गायन भी एक शैली है। इसमें व्यंग्यवाण के साथ छेड़छाड़ भरा मनोरंजन होता है। विरह गीत के रूप में भवइया सुना जा सकता है। ऐसी ही अन्य विधाएं बंगाल के लोक में हैं।[6] जब बात पहाड़ यानी कि उत्तराखण्ड की करें तो यहाँ भी इसके लोक के अनगिनत गीत विविध शैलियों में मिलते हैं। न्योली के रूप में दर्दभरे स्वरों का आलाप, झोड़ा–चांचरी–ढुस्का के रूप में नृत्यगीत, बैर के रूप में सवाल–जबाब का मनोरंजन, हुड़कीबौल के रूप में कृषिगीत, होली के रूप में शास्त्रीय और लोक संगीत का मिश्रण व भावप्रधान गायकी, रामलीला के रूप में गीतनाट्य शैली, सम्वाद के रूप में पांडव नृत्य, झुमौलों, बाजूबन्द, थड्या, फाग, सगुनगीत, संस्कार गीत.....न और भी कितने ही प्रकार हैं।

लोक बंगाल का हो, उत्तराखण्ड का हो या कहीं अन्य का, उसकी सहजता–सरलता जन्म से होती है, विकार और विकास तो उसका अगला चरण है। जब बात लोक गीतों की हो तो उनमें गेयता, व्यक्तितत्व, भावप्रवणता, रागात्मक अन्विति, आत्मद्रवणता, प्रवाहमयी शैली, भावाभिव्यंजना, प्रकृति चित्रण होता है। इसमें छन्द, लय, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, रस का स्वाभाविक रूप से होते हैं। लोक का यह शास्त्र ही है जो शास्त्रीयता के शास्त्र को भी दिशा देता है। लोक से उपजने वाले गीतों की सार्थकता हमेशा नवजीवन देने वाली, जन–जन में ऊर्जा संचार करने वाली रही है। रवीन्द्रनाथ जैसे विद्वान संगीत के इस पक्ष को बखूबी जानते थे। तभी उन्होंने बंगाल से पहाड़ का रुख किया होगा। प्रकृति के बीच अपनी साधना को जारी रखने का संकल्प रखने वाले रवीन्द्र का शान्तिनिकेतन रामगढ़ भी तो हो सकता है? 'टैगोर टाप' नाम से जिस खण्डहर को जाना जाता है, रवीन्द्र की उस धरोहर को फिर से स्थापित करने का सपना देख रही संस्था 'हर्डस' यदि अपनी योजना में सफल होती है तो रवीन्द्र का पहाड़ प्रेम निश्चित रूप से झलक उठेगा। यह प्रेम गीत–संगीत के रूप में ज्यादा है। गीत–संगीत ही ज्ञान–विज्ञान का सरल उपाय और ध्यान का सुगम माध्यम है। आज के परिप्रेक्ष्य में गुरुदेव का सपना सच साबित करने की जिद होनी ही चाहिये। क्योंकि यह जिद, 'जिद' न होकर लोक का स्वाभाविक रंग है। गुरुदेव को पहाड़ से जोड़ने वाले इस अभियान में कई जन जुट चुके हैं, यह शोध का विषय है ही।

सन्दर्भ–

1. रामगढ़ स्थित टैगोर टॉप के खण्डहर इस बार की पुष्टि करते हैं, जहाँ रवीन्द्रनाथ रहे थे।
2. कुमाऊँ विश्वविद्यालय द्वारा संरक्षित महादेवी वर्मा सृजन पीठ कवियत्री महादेवी की स्मरण दिलाता है और रचनाकार–रंगकर्मी विभिन्न अवसरों पर यहाँ एकत्रित होते हैं।
3. मल्ला रामगढ़ निवासी समाजसेवी 80 वर्षीय डी0एस0दरम्वाल से बातचीत के आधार पर।

4. हिमालयन एजुकेशनल रिसर्च एण्ड डेवलपमैंट सोसाइटी (हर्ड्स), हल्द्वानी, नैनीताल, द्वारा आयोजित कार्यों व शोध के में सम्मिलित लेखक ने स्वयं घने जंगल से घिरे टैगोर टॉप में जाकर रवीन्द्र नाथ का खण्डहर भवन और यह विलुप्तप्रायः इकलौता वृक्ष देखा। इस समय रामगढ़ से टैगोर टॉप जाने के लिये तीन किलोमीटर का सीसी मार्ग बन रहा है।
5. प्रो.अतुल जोशी, कु0वि0वि0 एवं सचिव, हड्र्स से बातचीत व संस्था के कार्यों के आधार पर।
6. संगीत विशारद, बसन्त, संगीत कार्यालय हाथरस, उ.प्र., अक्टूबर–1999, पृष्ठ– 680–705